योग और उसकी प्रासंगिकता

☐ डॉ० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

पतंजलि के 'योगशास्त्र' में चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है। इसके दो अर्थ हैं, एक तो यह कि—व्यक्ति अपनी स्वभावतः या प्रकृतितः चंचल मनोदशाओं के बिखराव को रोक कर उन्हें इष्टविषय पर केन्द्रित करे, दूसरे यह कि मनोवृत्तियों का दमन किया जाए क्योंकि वे जब तक हैं, तब तक चेतना को केन्द्रीकृतएकाग्र नहीं होने देतीं और अपनी संतुष्टि के लिए वे चेतना या आत्मा को पथभ्रष्ट करती हैं या उसे इन्द्रियज-अनुभवों या शब्द-स्पर्श रूप-रस और गंध के विषयों में लगाए रहती हैं, उसे स्वस्थ या अपना अवलोकन नहीं करने देतीं। चूंकि योगशास्त्रों में, एक मत से पिण्ड और ब्रह्माण्ड की एकता मानी जाती है, अतः पिण्ड में यानी प्रत्येक प्राणी में, जो ब्रह्माण्ड भर की शक्ति है—कास्मिकपावर छिपा हुआ है, उसे विकसित या रूपान्तरित करने में मुख्य बाधा वृत्तियाँ (Moods) डालती हैं अतः वृत्तिदाह, वृत्तिनिरोध ही योग है। इन वृत्तियों में प्रवृत्तियां (Instincts) भी प्रकट होती हैं।

योग का यह स्वरूप वैदिक, जैन तथा बौद्ध (प्रारम्भिक या हीनयान) योगशास्त्रों में सर्वमान्य है किन्तु तान्त्रिक योगशास्त्रों में योग की उक्त परिभाषा से बिल्कुल उल्टी परिभाषा और अभ्यास (साधना) स्वीकृत है। तन्त्रयोग यानी वाममार्गी शैव-शाक्त-बौद्ध आगमों में वज्रयान-सहजयान और शाक्तशास्त्रों में, अभिनवगुप्त के तन्त्रालोक में, वामयोगानुसार योग का वृत्तिनिरोध या वृत्तिदमन अग्राह्य है क्योंकि इसमें प्रकृति प्रदत्त जो वृत्तियाँ हैं, उनके दमन या दाह या विनाश का उपदेश है जो मनोविज्ञान के विरुद्ध है। तान्त्रिकयोग, मनोवैज्ञानिक है यानी वह प्रकृति द्वारा प्राप्त किसी भी वस्तु या वृत्ति को अकल्याणक नहीं मानता। प्रकृति को तान्त्रिकयोगी शक्ति या चिति का स्थूल रूप मानते हैं। अतः ये जो वृत्तियाँ हैं, प्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ और मनोदशाएँ, मूड्स, ये प्रकृति ने मनुष्य को दी हैं उसके मंगल के लिए, उसके विकास और मुक्ति के लिए, लेकिन उसे उनका सदुपयोग आना चाहिए।

क्योंकि तांत्रिकों के अनुसार ब्रह्माण्ड शिव है—शरीरं त्वं शम्भोः, अतः प्रकृति के निरोध का अर्थ दमन नहीं रूपान्तरण होना चाहिए, उदात्तीकरण। इसीलिए कहा गया है—

"यत्र यत्र मनो याति, तत्र तत्रैव धारयेत्"

जहाँ-जहाँ मन जाए, वहाँ उसे रोको। मन को या वृत्तियों को दबाओ मत, उनको साधो, उन्हें बदलो, उनको मूलसत्ता या प्रकृति का स्वाभाविक स्पन्दन या (Movement) मान कर, उन्हें उनके विषयों में लगाओ और स्वयं भीतर से तटस्थ रहना सीखो तो ये जो वृत्तियाँ हैं, स्वतः चांचल्य छोड़कर चेतना को ऊर्ध्वीकृत कर देगीं और जो वृत्तियाँ पतन का कारण समझी जाती हैं, वे मुक्ति का कारण बन जाएँगी।

मधुर ध्वनि सुनने की इच्छा स्वाभाविक है, इसका दमन न करो। ध्वनिमाधुर्य में यदि किसी व्यक्ति को आनन्द आता है तो उसमें तल्लीन हो जाओ किन्तु उस प्रक्रिया में,

उस क्षण या क्षणों में यह सोचो कि यह जो नादसौन्दर्य या ध्वनिमाधुर्य है, यह समूची सृष्टि की सतत प्रक्रिया का प्रतिफलन है यानी इस सृष्टि का होना (Becoming) सृष्टि का होते रहना या उसका होरहापन अपने बोध में लाओ। इससे इन्द्रियज अनुभव ब्रह्माण्डगत—कास्मिक ज्ञान से जुड़ जाएगा और जिस अनुभव के नीचे या पीछे ज्ञान जुड़ा हुआ है, उसमें पतन हो ही नहीं सकता। इसी तरह शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध के जो इन्द्रियज अनुभव हैं, वे अनुभव स्वाभाविक हैं और यदि उनके साथ उक्त परिज्ञान जुड़ा हो तो इन्द्रियज अनुभव उसके साथ जुड़े ज्ञान के कारण इन्द्रियातीत ज्ञान की अग्नि में आहुति की तरह पड़ेगा और मानवचेतना आनन्दित हो उठेगी। इस तरह तांत्रिक योग में योग का अर्थ वृत्तिनिरोध नहीं, वृत्ति का रूपान्तरण है यानी निरोध का अर्थ है, Transformation of human consciousness the rough Sensuous exprieence.

इस प्रकार योग दक्षिणयोग और वामयोग इन दो भागों में बँटा हुआ है। अधिकारीभेद से साधना का विधान है। उदाहरण के लिए जिस व्यक्ति के मन में इन्द्रियज अनुभवों की क्षणभंगुरता देखकर उनसे विरक्ति उपजती है, वे दक्षिणपंथी योग करें यानी वृत्तियों के दमन का मार्ग अपनाएँ किन्तु जिनके मन में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध के प्रति प्रबल आकर्षण है, जो भोगोन्मुख हैं, कामनाएँ और वासनाएँ जिन्हें तृप्ति के लिए प्रतिक्षण ललचातीं हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिए तांत्रिक या वाममार्गी योग का विकल्प है जो भोग को योग में परिणत कर देता है। जिस तरह लोहा पानी में डूब जाता है मगर उसे पीट कर, उसकी नाव बना लेने पर समुद्र को पार किया जा सकता है, उसी प्रकार वासनाओं, कामनाओं, इच्छाओं और वृत्तियों, संक्षेप में काम, क्रोध, मद, लोभ का रूपांतरण संभव है। इसकी पद्धति विषस्य विषमौधषम् है, विष को विष से मारो, काम को काम से, लोभ को लोभ से, भय को भय से जीतो। स्पष्ट है कि यह विकटसाधना है, तलवार की धार पर चलना है। पर यह विकल्प तो है, कठिन होने से खतरनाक-क्षेत्र(Dangerous Zone) में उतरने से, अनुभवों की उत्कटता या संवेग की प्रबलता में भी अपने बोध या चैतन्य को जागृत रखना कठिन है परन्तु तभी तो इसे वीरसाधना कहा गया है, कोमल और कायर इसे करेंगे तो पतन होगा ही मगर वीर व्यक्ति के लिए यह असंभव नहीं है।

दक्षिणपंथी योगियों—कपिल, पतंजलि, बुद्ध और जैन योगियों ने जमकर इस वाममार्ग का विरोध किया है किन्तु दक्षिणपंथियों या वैदिकमतावलम्बियों में भी राजा जनक तथा वासुदेव-कृष्ण जैसे उदाहरण हैं जिन्होंने स्वाभाविक जीवन का दमन न कर 'राजयोग' का अभ्यास किया और इन्द्रियज अनुभवों से संन्यास नहीं लिया।

संन्यासमार्गी योगियों में वैराग्य द्वारा योगसाधना हुई, वृत्तिदमन द्वारा। सभी संन्यासमार्गियों में यह सामान्य प्रवृत्ति है चाहे वे जैन हों या वैदिकमतावलम्बी। इन वृत्तिनिरोधकों में जैनयोग परम्परा का अपना महत्त्व है।

जैनयोग ध्यानप्रधान है। आचार्य हरिभद्र के योगबिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, योगशतक तथा योगविंशिका में इस ध्यान का वर्णन है। आचार्य हेमचन्द्र ने "योगशास्त्र" की रचना की, आचार्य शुभचन्द्र के "ज्ञानार्णव" में इसीका विस्तार है और जैनतांत्रिक योगसाधना (दक्षिणपंथी या शुद्धाचारी) का वर्णन है। उपाध्याय यशोविजय ने

आसमस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

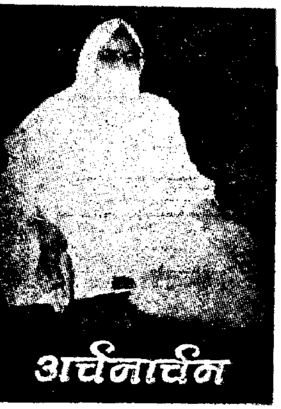

"अध्यात्मसार" ग्रन्थ लिखा। उन्होंने "योगावतारबत्तीसी" में—जैनयोग की प्रक्रिया को प्रस्तुत किया है। जैनमत में "योगसार" ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

आचार्य हेमचन्द्र का योगशास्त्र ग्रन्थ बहुत रोचक है। इसमें कोरा योग वर्णन नहीं है अपितु अनुभव की गूढ़ता भी है, गहराई भी। जिसकी चेतना में विच्छिन्नता है, वह कोई उपलब्धि नहीं कर सकता। सांसारिक उपलब्धि के लिए चेतना की एकाग्रता आवश्यक है अतः लौकिक और आत्मगत (Subjective) अनुभव दोनों के लिए अपनी चेतना को जानना जरूरी है। आत्मबोध के विना इधर-उधर भटकने से कुछ मिलता नहीं है—

तांस्तानापरमेश्वरादपि परान् भावैः प्रसादं नयन्,
तैस्तैस्तत्तदुपायमूढ, भगवन्नात्मन् किमायस्यसि।
हन्तात्मानमपि प्रसादय मनाग् येनासतां सम्पदः
साम्राज्यं परमेऽपि तेजसि तव प्राज्यं समुज्जृंभते !
(द्वादश प्रकाश, योगशास्त्र)

यह कितने आश्चर्य की बात है कि जिस चेतना से सब कुछ उपलब्ध होता है, मनुष्य उसको प्रसन्न नहीं करता, उसका विकास नहीं करता, उसको अनुशासित नहीं करता, उस पर प्रयोग नहीं करता !

वैराग्य, जैनयोग में योग का आधार है। यह वैराग्य कैसे हो, इसका मनोविज्ञान बताते हुए हेमचन्द्राचार्य मन को समझाते हैं। आधुनिक मस्तिष्क-विज्ञान के अनुसार मस्तिष्क के कतिपय केन्द्रों की गति ही 'मन' है, इन केन्द्रों को निष्क्रिय बनाना उन्मनावस्था है, जिसको कबीर ने 'उन्मन' या 'उन्मुनि' कहा है। मस्तिष्क के कतिपय केन्द्रों से उन्मुख रह कर, मात्र 'होने' या अस्तित्व या प्राणसत्ता में तल्लीन होकर सर्वत्र एक लयानुभूति करना ही साधना है, मस्तिष्कगति या आत्मगति शंकुभूत (Pointed) न हो, किसी आलबम्न विशेष में संलग्न न हो, मात्र अपने में रमे, यह दशा ही आनन्द देती है क्योंकि वह अपने में सिमिट कर तटस्थ होकर, चीजों और व्यक्तियों के मूल में जो मूलसत्ता या प्रकृति है, जो अव्यक्त है, सूक्ष्म है, जिसमें मूलतः सारी दृष्टि विद्यमान है, उसका बोध जगाकर, उस बोधज अनुभूति में उस मूलज्ञान में उस मूलतत्त्व के अहसास में, तल्लीन होना ही निर्द्वन्द्वता है। संसार में सतह पर तो द्वन्द्व हैं उनसे परे जाकर अपने भीतर सिमिट कर ही निर्द्वन्द्व समाधि प्राप्त हो सकती है।

आचार्य हेमचन्द्र ने बाह्यविषयों के सम्पर्क में आते ही मस्तिष्क के कुछ केन्द्रों की अतिसक्रियता को मन कहा है। कृष्ण ने 'गीता' में मन वायु समान बताया है और हेमचन्द्र ने पवनसम। मन के प्रति उदासीन भाव से वह निष्क्रिय हो जाता है, यही उन्मनावस्था है—

अमनस्कतया संजायमानया नाशिते मनःशल्ये।
शिथिलीभवति शरीरं छत्रमिव स्तब्धतां त्यक्त्वा॥ (द्वादश प्रकाश)

अमनस्कता से मन स्तब्ध हो जाता है और स्वचेतनावलोकन या आत्मपरामर्श का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इस उन्मनावस्था का वर्णन हेमचन्द्राचार्य ने इस तरह किया है—

विश्लिष्टमिव प्लुष्टमिवोड्डीनमिव प्रलीनमिव कायम् अमनस्कोदय-समये, योगी जानात्य सत्कल्पम्।

उन्मनीभाव में शरीर बिखर सा जाता है, भस्म सा हो जाता है, मानो वह शरीर उड़ गया है, विलीन हो गया है, वह है नहीं अतः शरीरानुभूति का अत्यन्ताभाव ही उन्मनावस्था है।

जैनयोग में यहाँ तक तो अन्य योगियों जैसा ही अनुभव है, किन्तु पद्धति में अन्तर है। उदाहरण के लिए जैनयोग में प्राणायाम पर बल नहीं दिया गया है, यों 'योगशास्त्र' में उसका वर्णन है। ध्यान पर अधिक जोर है। और समाधि में सर्वविषयोपस्थिति का अभाव हो जाता है। इस मुक्तावस्था में निर्द्वन्द्वता के कारण, इन्द्रियों और मन के स्तब्ध या शान्त हो जाने से आनन्द प्राप्त होता है। इन्द्रियज और मानसिक सुखों में दुःख का, क्षोभ का लेश रहता है। समाधिज आनन्द में सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता भी मिलती है, यह भी कहा गया है:—

सादिकमनन्तमनुपममव्याबाधं स्वभावजं सौख्यम्
प्रायः स केवलज्ञानदर्शनो मोदते मुक्तः। (एकादश प्रकाश)

योगानुभवों से चमत्कार भी होते हैं, असाधारण अनुभव होते हैं। इसका आचार्य हेमचन्द्र ने विस्तार से वर्णन किया है, जिसमें सिद्धियों और निद्धियों गगनगमन-परकाया-प्रवेशादि का भी पल्लवन है और इसका भी कि एक इन्द्रिय से अनेक इन्द्रियों का अनुभव मिल सकता है। सौन्दर्यशास्त्र में इन्द्रियक्रमविपर्यय को माना गया है किन्तु यहाँ मात्र क्रमाविपर्यय नहीं बल्कि अनेकानुभवों की उपलब्धियों को माना गया है:—

सर्वेन्द्रियाणां विषयान्-गृह्णात्येकमपीन्द्रियम् ।
यत्प्रभावेन सम्भिन्नश्रोतोलब्धिस्तु सा मता ।। (प्रथमप्रकाश)

योगी जीभ से सूंघता और देखता है, नाक से चखता और देखता है, आंख से सुनता है, सूंघता है, चखता है—आदि।

भाषागत या संज्ञा विशेषणादि के अन्तर के बावजूद जैनयोग-सांख्ययोग-पतंजभलियोग जैसा ही है। जैनयोग में आचारपक्ष (सूर्यास्त के पूर्व भोजन, अहिंसादि) प्रबलतम है इतना कि अति पर पहुँच जाता है जबकि वैदिक परम्परा के योग विशेषकर राजयोग में युक्ताहार विहार को आवश्यक माना गया है:—

"युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टा....(गीता)।

ऊपर के विवेचन में यह देखा गया होगा कि एक विशेष प्रकार का मनोविज्ञान योग के रूप में काम कर रहा है। यह कहा जा चुका है कि यह दो प्रकार का है, इन्द्रिय-निगृह का दक्षिणपंथी योग और इन्द्रिय-अनुग्रह वाला वाममार्गी योग। दोनों का उद्देश्य निर्द्वन्द्व मनोदशा प्राप्त करना है। इसे यदि सही तौर पर समझा जाए तो यह प्रासंगिक हो सकता है। सांसारिक व्यवहार में द्वन्द्व होता है क्योंकि विभिन्न इच्छाएँ, ममताएँ, विचार और रागद्वेष तथा हित टकराते हैं। आदर्श समसामाजिक व्यवस्था बन भी जाए तो भी व्यक्ति के विकास की समस्या बनी रहेगी। द्वन्द्व साम्यवादी व्यवस्था में भी रहेंगे। अभी वे शोषणज हैं तब वे मनोदशागत, विकासगत प्रकृतिगत और भावगत होंगे। अतः सवाल वही है कि द्वन्द्वात्मक जगत के व्यावहारिक स्तरों पर कैसे जिया जाए? योग एक विकल्प पेश करता है। निर्द्वन्द्व होकर द्वन्द्वों का सामना करना ही एकमात्र उपाय है अन्यथा क्षोभ और तनाव में, उन्माद

आसनस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

या वहशत में व्यक्ति अपने को रुग्ण बना लेगा या आत्मघात कर लेगा। वह रक्तचाप, हृदयशूल आदि का शिकार हो जाएगा।

योग, विशेषकर जैनयोग में ईश्वरवाद का भी झंझट नहीं है। योग निरीश्वर शारीरिक मानसिक साधना या ड्रिल है। सांख्य, जैन, बौद्धमतों के योग में ईश्वर नहीं है, सिर्फ चेतना की एकाग्रता या ध्यान और धारणा है। अतः निरीश्वरवादी भी योग कर सकता है।

स्थूल सूत्रों से मनुष्य की चेतना और मन के चमत्कारों की व्याख्या नहीं हो सकती किन्तु सूक्ष्मता से देखें तो द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में भी पदार्थ (पुद्गल) सूक्ष्म है और मानव शरीर चूंकि "अणोः अणीयान् महतो महीयान्" पदार्थ से बना है अतः उसकी शक्ति और संभावना का कोई अन्त नहीं है। योगसाधना का सोवियत रूस में गहन अध्ययन हो रहा है। पता चला है कि यंत्र विज्ञान (साईबरनैटिक्स) के आधार पर दूर दृष्टि दूर श्रवण (टैलीपैथी आदि) आदि का अभ्यास हो रहा है और पाया गया है कि टैलीपैथी द्वारा पचास से सत्तर अस्सी प्रतिशत सफलता मिलती है। इसका भौतिकविज्ञान द्वारा अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ है कि किसी दूरस्थ व्यक्ति पर ध्यान एकाग्र करने या स्मरण करने, विप्रलम्भ की दशा में सतत ध्यान करने जैसी दशाओं में अदृश्य भौतिक किरणें निकलतीं हैं जो ध्यान या स्मरण के सातत्य से दूरस्थ व्यक्ति तक पहुँच कर उसे क्षुब्ध कर देती हैं।

योगज चमत्कारों के वैज्ञानिक अध्ययन का एक उपाय, योगी के शरीर पर यंत्र लगाकर, उसकी दशाओं का अंकन है, प्राणायाम, ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, समाधि आदि में, योगी में क्या शारीरिक परिवर्तन होते हैं और क्यों?

यह रोचक और चुनौती भरा विषय है किन्तु आधुनिक, गतिशील युग में तनावों से और चिन्ताओं से मानवशरीर को बचाने के लिए योग उपयोगी है, यह तथ्य तो आप सभी ने स्वीकार कर लिया है। संभव है, विज्ञान से योगज पदार्थ और प्रत्यक्ष भी सिद्ध हो जाएँ, मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान के रूप में योगजदशाओं का अध्ययन कर ही रहा है। अभी तक योग की अलौकिकता में अनेक संदेह हैं किन्तु दूरदर्शन या दूरश्रवण या दूरसंदेशप्रेषण जैसे अनुभवों को आज संदेहास्पद नहीं माना जाता।

जैनयोग का अध्ययन और प्रयोग इस सम्मोहक विषय में मदद कर सकता है, इसमें संदेह नहीं है।

'गया-प्रयाग' सात-३-पच्चीस
जवाहरनगर जयपुर

□□